Reg. No. : N-1316/2014-15

IIJIF

ISSN 2394-2207
May-October, 2024
Vol. X, No. II
IIJ Impact Factor : 5.01

उन्मेष

Unmesh

An International Half Yearly
Peer Reviewed Refereed Research Journal
(Arts & Humanities)

प्रधान सम्पादक
डॉ० राधेश्याम मौर्य

सम्पादक
डॉ० शिवेन्द्र कुमार मौर्य

प्रकाशक : जन सेवा एवं शोध शिक्षा संस्थान, प्रतापगढ़, उ०प्र०

Scanned with OKEN Scanner

- हिन्दी साहित्य में यात्रा–वृत्तांत : परम्परा और समकालीन परिदृश्य — 53–56
  मनोज कुमार
- भारतीय कला में प्रतीक — 57–59
  कु0 अर्चना
- हिन्दी सिनेमा के कुछ गुमनाम संगीतकार — 60–62
  स्निग्धा सिंह
- अज्ञेय की कहानियों में विभाजन का दंश : सांप्रदायिकता और मानवीय संवेदनाएँ — 63–66
  डॉ0 संदीप सो. लोटलीकर
- उपनिषदीय शिक्षा दर्शन और शाश्वत जीवनमूल्य — 67–69
  डॉ0 मनु मिश्र
- भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पर महिला लेखिकाओं की छाप — 70–72
  अमरीन याकूब
- सर्वेश्वर की कविताओं में निहित अंतर्वस्तु का विवेचन — 73–76
  अनुज कुमार
- संघवाद बनाम एकात्मकता : सरकारी संरचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन — 77–80
  डॉ0 दिनेश कुमार
- डॉ0 शान्ति सुमन के गीतों में प्रेम एवं सौंदर्य का वर्णन — 81–84
  मोहन कुमार
- उत्तराखण्ड की विरासत में लोक उत्सवों की प्रासंगिकता — 85–88
  डॉ0 नरेन्द्र सिंह धारियाल
- हिंदी व्यंग्य परंपरा में विनोद साव का योगदान — 89–91
  नीलम वर्मा व डॉ0 पन्नाला यादव
- मिशन प्रेरणा के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु तकनीकी प्लेटफॉर्म्स का प्रभावी उपयोग — 92–95
  आशुतोष
- पुराणेषु पुरुषार्थ निरूपणम् — 96–100
  सत्य प्रकाश तिवारी
- भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा रणनीति : एक विश्लेषण — 101–105
  डॉ0 अरविंद कुमार
- राष्ट्रीयता को स्वर देता प्रेमचंद साहित्य — 106–108
  प्रियंका मिश्रा
- समाज के कमजोर वर्गों के प्रति असहिष्णुता की स्थिति की विवेचना — 109–111
  डॉ0 सन्तराम पाल
- जाति–प्रथा : डॉ. भीमराव आम्बेडकर — 112–115
  डॉ0 नंदी पटोदिया व डॉ0 अरविन्द कुमार
- कामायनी में अभिव्यक्त युगीन परिदृश्य — 116–118
  डॉ0 रजनीश कुमार यादव

Scanned with OKEN Scanner

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

Impact Factor : 5.01
Vol. : X, No. II,
May-October, 2024
Pg. No. 112-115

जाति–प्रथा : डॉ. भीमराव आम्बेडकर

डॉ0 नंदी पटोदिया* व डॉ0 अरविन्द कुमार**

*असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग

**असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय (केन्द्रीय विश्वविद्यालय), सागर (म.प्र.) 470003

सारांश : भारतीय समाज में जाति–प्रथा एक बहुत बड़ी समस्या है। इस जाति–प्रथा की संरचना वर्ण–व्यवस्था पर आधारित है। सामाजिक विकास के कारण जाति–प्रथा की उत्पत्ति हुई है। यह भारतीय समाज की बहुत खराब व्यवस्था कही जा सकती है। इसमें समाज को चार वर्ण–व्यवस्था में विभक्त करके समाज का संचालन किया जाता है। यह व्यवस्था भारतीय समाज में कब और कैसे शुरु हुई यह विवाद का प्रश्न है। यह समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण में विभाजित है। चारों वर्णों के कार्य अलग–अलग बटे हुए होते हैं। सबसे निचले पायदान पर शूद्र की संरचना है। बाबा साहब डॉ. भीमराव आम्बेडकर अपनी पुस्तक 'अस्पृश्य' में अस्पृश्य, दास–प्रथा और बंधुआ मजदूर में विभेद करते हैं। इसमें सबसे कठिन जीवन अस्पृश्यों की बताई है तथा शूद्रों को अस्पृश्य, दास–प्रथा और बंधुआ मजदूर अलग किया है। बाबा साहब डॉ. भीमराव आम्बेडकर शूद्रों का वर्णन अपनी पुस्तक 'हू वेयर शूद्राज' में किया है। दलितों की स्थिति बहुत दयनीय है। यह दयनीय स्थिति भारतीय सभ्यता और संस्कृति के मन्द विकास के कारण हुआ है। भारतीय समाज में जाति–प्रथा का सबसे बड़ा दोष छुआछूत की भावना है। परन्तु शिक्षा के प्रसार से यह सामाजिक बुराई दूर होती जा रही है।

बीज शब्द – जाति–प्रथा, वर्ण–व्यवस्था, छुआछूत, बंधुआ–मजदूर, अस्पृश्यता, दास–प्रथा, संवैधानिक, बहिष्कृत, उन्मूलन, सम्प्रेषण।

प्रस्तावना : भारतीय समाज में व्याप्त जाति–व्यवस्था ही छुआछूत और भेदभाव का प्रमुख कारण है। जाति–व्यवस्था की संरचना वर्ण–व्यवस्था पर आधारित है। भारत में जाति–व्यवस्था कई हजारों साल पहले स्थापित हो चुकी थी। जाति–व्यवस्था के अन्तर्गत भारत में अनेक जातियाँ आती हैं। सबसे नीचले स्तर पर दलित समाज आता है। दलित का अर्थ होता है– दबाया हुआ, कुचला हुआ, मसला हुआ, अर्थात् वह जाति जो समाज में सदियों से अपने अधिकारों से वंचित रखा गया हो। भारत में वर्ण–व्यवस्था स्थापित है, उस वर्ण–व्यवस्था के अन्तर्गत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि चार वर्ण आते हैं। दलित या अस्पृश्य को वर्ण–व्यवस्था से बाहर रखा गया। इनका गाँवों में प्रवेश वर्जित था, जो भारतीय समाज में प्राचीन काल से आज तक किसी–न–किसी रूप में चली आ रही है। इसी से जाति–व्यवस्था बनी हैं। अधिकांश विद्वानों का मानना था कि यह व्यवस्था सर्वप्रथम कर्म के आधार पर निर्मित थी, बाद में धर्मग्रन्थों का हवाला देकर जन्मना बना दिया गया। वर्ण–व्यवस्था के सन्दर्भ में यह बहुप्रचलित और प्रचारित बात है कि "ब्राह्मणों का काम समाज के लिए ज्ञानार्जन था। वह शिक्षण, पौरोहिती, यज्ञादि अनुष्ठान का कार्य करता था। क्षत्रियों का कार्य अपने बाहुबल से समाज की रक्षा करना था। वैश्य और अन्न उत्पादन एवं पशुपालन आदि के कार्य करते थे और शूद्रों का कार्य सेवा था। वे अन्य सभी वर्गों की सेवा करते थे और बदले में समाज के अन्य वर्गों द्वारा उनका भरण–पोषण होता था। किन्तु धीरे–धीरे इस व्यवस्था में विकृतियाँ आती गयीं और यह भारतीय समाज के लिए घातक सिद्ध हो गया। कालान्तर में इन पर श्रेष्ठ–अश्रेष्ठ के भाव हावी होते चले गये और इनमें कोई अत्यन्त नीच तो कोई अत्यन्त ऊँच बन गया। जाति–प्रथा इसी से उत्पन्न हुई।"[1] शूद्र और अस्पृश्य सामाजिक संरचना के सबसे निचले स्तर पर अवस्थित सर्वाधिक निकृष्ट और उपेक्षित वर्ग था तथा 'मनुस्मृति' में इनकी स्थिति को और भी दयनीय और निकृष्ट बताया गया है। हरिनारायण ठाकुर की पुस्तक 'दलित साहित्य का समाजशास्त्र' में ऋग्वेद के पुरुषसूक्त का सन्दर्भ देकर बताया गया है कि– "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद बाहु राजन्यः कृतः, उरु तदस्य यद् वैश्यः पदोभ्याम शूद्रो अजायते।"[2]

अर्थात् ऐसा माना जाता है कि ब्राह्मण की उत्पत्ति ब्रह्म के मुख से, क्षत्रिय की बाहु से, वैश्य की जंघा से और शूद्रों की उत्पत्ति पैरों से हुई। बबन रावत 'भंगी जातियों की उत्पत्ति' नामक लेख में शूद्र की उत्पत्ति और अस्पृश्य पर गंभीर चिन्तन करते हुए लिखते हैं कि "भारतवर्ष वर्ण एवं जाति–व्यवस्था पर आधारित एक विशाल तथा प्राचीन देश है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र इन चार वर्णों के अन्तर्गत तकरीबन साढ़े छः हजार जातियाँ हैं, जो आपस में सपाट नहीं बल्कि सीढ़ीनुमा है। यहाँ ब्राह्मण को सबसे श्रेष्ठ तथा भंगी को सबसे अधम और नीच समझा जाता है। यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि आज का दलित समाज (अ.जा.) काल का शूद्र नहीं था, बल्कि चतुर्थ वर्ण–व्यवस्था के बाहर अछूत और चांडाल की श्रेणी में आता था, जो गाँव या नगर से बाहर रहता था। जिसे गाँव या नगर में प्रवेश करते समय अपने आगमन का अहसास कराने के लिए टिन या लकड़ी बजाते हुए चलना पड़ता था, ताकि लोग दूर हट जायें। इनका छुआ हुआ पानी सवर्ण समाज नहीं पीता था, तो समाज में चलने की बात कौन कहे। इनकी परछाई भी यदि भूल वश किसी ब्राह्मण पर पड़ जाती थी तो उसे कठोर

Scanned with OKEN Scanner

से कठोर सजा दी जाती थी। ब्राह्मण को शूद्रों के लिए धार्मिक अनुष्ठान कराने पड़ते थे। इसलिए चांडाल आमतौर पर दोपहर को ही अपने घरों से निकलते थे। ताकि उनकी परछाई उन्हीं तक सीमित रहे वे सुबह और शाम को अपने घरों से नहीं निकलते थे, क्योंकि उस समय सूरज की किरणें लम्बवत होती है, जिससे परछाई दूसरों तक पहुँच जाती है।"[3]

हरिनारायण ठाकुर लिखते हैं कि भारतीय संस्कृति कोश के अनुसार "प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था में चार वर्णों में से चतुर्थ वर्ण का व्यक्ति शूद्र था। वर्ण–व्यवस्था का आरम्भ कर्म पर आधारित था। बाद में धीरे–धीरे यह जनम पर आधारित और व्यक्ति के अभ्युदय के मार्ग की बाधा बन गयी। इसीलिए विचारकों, सन्तों और समाज सुधारकों ने इसके विरुद्ध आवाज उठायीं। शूद्र वर्ण के प्रति होने वाले सामाजिक अन्याय का सब ओर से विरोध होने लगा। अब वर्ण–व्यवस्था समाप्त प्राय है और चतुर्थ वर्ण के प्रति मध्यकाल में होने वाला भेदभाव आज सामाजिक रूप से निन्दनीय है और कानूनी दृष्टि से दंडनीय अपराध भी है।"[4]

शूद्रों के उद्भव के सम्बन्ध में डॉ. भीमराव आम्बेडकर, जी.जे. हेल्ड, दत्ता आदि विद्वानों के मतानुसार निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि "आन्तरिक और बाहरी संघर्षों के कारण आर्य या आर्य पूर्व लोग ही शूद्र की स्थिति में पहुँच गये।"[5] वस्तुतः शुद्र लोग भारतीय समाज में सबसे निचले पादान पर रहे हैं। हरिनारायण ठाकुर लिखते हैं कि "दलित शब्द बिल्कुल नया है। यह आधुनिक मराठी गुजराती, हिन्दी और अन्य अनेक भारतीय भाषाओं का एक प्रचलित शब्द है, जिसका सामान्य अर्थ होता है दरिद्र और उत्पीड़ित/दलित भी शूद्र ही हैं। किन्तु शूद्र और दलित की सामाजिक स्थिति में पर्याप्त अन्तर है। शूद्र सबसे निचले स्तर पर ही सही चतुर्वर्ण्य व्यवस्था में शामिल है। दलित भी शूद्र की श्रेणी का ही वर्ग है। महात्मा फूले ने इन्हें 'अतिशूद्र' कहा था। किन्तु सभी दलित चतुर्वर्ण्य व्यवस्था में शामिल नहीं है। वैसे तो दलित का सामान्य अर्थ दबा–कुचला और अपमानित–प्रताड़ित प्राणी होता है। किन्तु आज तक के प्रचलित अर्थ में यह केवल भारत की अनुसूचित जाति और जनजातियों के अर्थ में ही रूढ़ हो गया है।"[6] आज के प्रचलित अर्थ में शूद्र सेवाभाव (नाई गिरी, बढ़ई गिरी, घड़ा आदि बनाने के पेशे) से जुड़े सभी लोगों को कहा जाता है। जबकि दलित केवल अन्त्यज समझे जाने वाले अनुसूचित–जाति (दलित) तथा नगर से बाहर बसने वाले को अनुसूचित–जनजाति (आदिवासी) आदि लोग हैं। शब्दकोशों में दलित का अर्थ होता है– जिसका दलन और दमन हुआ हो। अर्थात् जो सदियों से दबाया गया है, उत्पीड़ित, उपेक्षित, शोषित, घृणित, रौंदा हुआ, मसला हुआ, कुचला हुआ, विनिष्ट, मर्दित, हतोत्साहित वंचित आदि हो।

हरिनारायण ठाकुर के अनुसार, "दलित समुदाय एवं सामाजिक परिवर्तन नामक अपने लेख में डॉ. विवेक कुमार लिखते है कि आधुनिक काल में दलित समुदाय में सामाजिक परिवर्तन हेतु बाबा साहब भीमराव आम्बेडकर का आन्दोलन प्रमुख रूप से सामने आता है। 1919 में दलित आन्दोलन के क्षितिज पर उदय होने के पश्चात् से बाबा साहेब के परिनिर्वाण तक इस आन्दोलन में लगातार वृद्धि हुई, जिससे दलित समुदाय में सामाजिक परिवर्तन का क्षितिज और व्यापक हुआ बाबा साहब ने अपनी आधुनिक शिक्षा, ज्ञान तथा पाश्चात्य् देशों में जन सामान्य को प्रदत्त मानव अधिकारों के बल पर भारत में दलितों के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षणिक आदि अनेक अधिकारों को मुहैया कराते हुए लम्बा संघर्ष छेड़ा, बाबा साहब भीमराव आम्बेडकर ने भारतीय समाज की परम्परा तथा संरचना दोनों ही के बदलाव हेतु आन्दोलन चलाए। सामाजिक स्तर पर उन्होंने पहले हिन्दू धर्म, भाग्य, भगवान, पुजारी, धार्मिक पुस्तकें आदि अनेकों का वस्तुनिष्ठ आकलन कर उन्हें भारतीय समाज के पतनशील बताया तथा नवीन परम्पराओं को विकसित करने के लिए व्यावहारिक ज्ञान दिया।"[7] डॉ. भीमराव आम्बेडकर 'अस्पृश्यता' नामक ग्रन्थ में दर्शाते हैं कि "दास–प्रथा और अस्पृश्यता दोनों ही कोई स्वतंत्र सामाजिक व्यवस्था नहीं है।"[8] डॉ. भीमराव आम्बेडकर आगे लिखते हैं कि "एक अछूत के रूप में पैदा होने पर अछूत की सारी अयोग्यताएँ उसे मिल जाती हैं।"[9] इसलिए डॉ. भीमराव आम्बेडकर भारतीय समाज में जाति–प्रथा उन्मूलन की बात करते हुए इसे समाप्त करने का भारतीय संविधान का सहारा लेते हैं।

दलितों के साथ हो रहे छुआछूत की समस्या से परिचित कराते हुए अपने अस्पृश्यता नामक ग्रंथ में लिखते हैं कि "अछूतों के लिए भेदभाव की समस्या, उनके लिए अपनी मानवीयता की पुनर्प्राप्ति की समस्या के बाद दूसरी गंभीर समस्या है। अछूतों के विरुद्ध भेदभाव, हिन्दुओं के द्वारा इतने विशाल पैमाने पर किया जाता है कि कोई बाहरी व्यक्ति उसकी कल्पना तक नहीं कर सकता। जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है, जिसमें अछूतों और हिन्दूओं के बीच प्रतिद्वंद्विता न हो और जिसमें अछूतों को भेदभाव का शिकार न होना पड़ता हो। इसका स्वरूप भी अत्यंत उग्र है।"[10] बाबा साहब भीमराव आम्बेडकर दलितों का पक्ष लेते है और वकालत करते हुए लिखते हैं कि "सार्वजनिक सुविधाओं के उपयोग में भेदभाव की भावना अछूतों के स्कूलों, कुओं, मंदिरों तथा परिवहन–साधनों से अपवर्जन में परिलक्षित होती है। लोक प्रशासन अछूतों के विरुद्ध भेदभाव की भावना से पूरी तरह शराबोर हैं। इसने न्यायालयों, सरकारी विभागों, सरकारी बैंकों, विशेष रूप से पुलिस को प्रभावित किया है। जमीन ऋण प्राप्ति, नौकरियां प्राप्त करने के मामले में अछूतों के विरुद्ध भेदभाव अत्यंत उग्र रूप में दिखाई देता है।"[11] बाबा साहब भीमराव आम्बेडकर हिन्दू समाज को मिथक बताते हुए कहते है कि "जाति–प्रथा से आर्थिक उन्नति नहीं होती। जाति–प्रथा से न तो नस्ल या प्रजाति में सुधार हुआ है और न ही होगा। लेकिन इसमें एक बात अवश्य सिद्ध हुआ है कि इससे हिन्दू समाज पूरी तरह छिन्न–भिन्न और हताश हो गया है। सबसे पहले हमें यह महत्वपूर्ण तथ्य समझना होगा कि हिन्दू समाज एक मिथक मात्र है।"[12] बाबा साहब भीमराव आम्बेडकर का मानना है कि "कोई भी सुधार तब शुरू होता है, जब कोई व्यक्ति अपने समुदाय के मानकों, समुदाय की

सत्ता और समुदाय के हित से ऊपर और इससे अलग अपने विचारों, अपनी धारणाओं और स्वयं की स्वतंत्रता और हित पर अधिक बल देता है। लेकिन यह सुधार आगे लगातार सम्पन्न होगा या नहीं, यह इस पर निर्भर करता है कि उस व्यक्ति का समुदाय उसके दृढ़ विचारों को किस सीमा तक समर्थन देता है। अगर समुदाय में सहनशीलता की भावना है और वह अपने लोगों से न्यायचित व्यवहार करता है, तो ऐसे व्यक्ति अपने विचारों पर दृढ़ रहेंगे, और अंततः अन्य लोगों को भी नए विचारों से सहमत कराने में सफल हो जायेंगे।"[13] डॉ. भीमराव आम्बेडकर जाति–प्रथा उन्मूलन पर अपने गम्भीर चिन्तन प्रस्तुत करते हुए बताते हैं "आजकल किसी भी जाति के पास किसी भी ऐसे व्यक्ति को जाति से बहिष्कृत करने का पूरा अधिकार रहता है, जिसने उस जाति के नियम को तोड़ने का अपराध किया हो, अगर इस बात को समझ लिया जाय कि जाति से बहिष्कृत होने का अर्थ है, उसे समाज के किसी भी कार्य में भाग ने लेने देना, तो वस्तुतः यह कहना कठिन है कि जाति–बहिष्कार अधिक कठोर दंड है या मृत्यु।"[14]

बाबा साहब भीमराव आम्बेडकर का मानना है कि जाति–प्रथा ने जनचेतना को नष्ट किया है, इसके सन्दर्भ में कहते है कि "हिन्दुओं की नीति और आचार पर जाति प्रथा का प्रभाव अत्यधिक शोचनीय है। जाति–प्रथा ने जन–चेतना को समाप्त कर दिया है, उसने सार्वजनिक धर्मार्थ की भावना को भी नष्ट कर दिया है। जाति प्रथा के कारण किसी भी विषय पर सार्वजनिक सहमति का होना असंभव हो गया है। हिन्दुओं के लिए उनकी जाति ही जनता है। उनका उत्तरदायित्व अपनी जाति तक सीमित है। उनकी निष्ठा अपनी जाति तक ही सीमित है। गुणों का आधार भी जाति ही हैं और नैतिकता का आधार भी जाति ही है। सही व्यक्ति के प्रति (अगर वह उनकी अपनी जाति का नहीं है) उनकी सहानुभूति नहीं होती। गुणों का कोई मूल्य नहीं है, जरूरतमंद के लिए सहायता नहीं है, दुखियों की पुकार का कोई जवाब नहीं है, अगर सहायता दें तो वह केवल जाति मात्र तक सीमित है। सहानुभूति है, लेकिन अन्य जातियों के लोगों के लिए नहीं। बाबा साहेब भीमराव आम्बेडकर कहते हैं कि "क्या हिन्दू किसी भी महान और अच्छे व्यक्ति के नेतृत्व को स्वीकार कर सकते हैं और उसका अनुसरण करते हैं? यदि कोई महात्मा हो तो उसकी बात अलग है, लेकिन सामान्य उत्तर यही है कि वह किसी भी नेता का अनुसरण तभी करेगा, जब वह उसकी जाति का हो। ब्राह्मण, ब्राह्मण नेता को ही मानेगा, कायस्थ, कायस्थ नेता का ही अनुसरण करेगा, आदि–आदि। हिन्दुओं में इस बात की क्षमता ही नहीं है कि वे अपनी जाति से भिन्न अन्य जाति के व्यक्ति के गुणों का सही मूल्यांकन कर सकें। गुणों की सराहना तभी होती है, जब वह व्यक्ति अपनी जाति का हो। उनकी पूर्ण नैतिकता उतनी ही निम्न कोटि की है, जितनी जंगली जातियों की होती है। आदमी कैसा भी हो सही या गलत, अच्छा या बुरा, बस अपनी जाति का होना चाहिए। न उन्हें गुणों की प्रशंसा से मतलब है, न बुराई के विरोध से। उनके लिए मुद्दा सिर्फ इतना है कि अपनी जाति का पक्ष लें या नहीं।"[15] बाबा साहेब डॉ. भीमराव आम्बेडकर एक आदर्श समाज स्थापित करने की बात करते हैं और कहते हैं कि "अगर आप मुझसे पूछें तो मेरा आदर्श एक ऐसा समाज होगा, जो स्वाधीनता, समानता और भाईचारे पर आधारित हो।"[16] आदर्श समाज गतिशील होना चाहिए। उसमें ऐसी भरपूर सरणियां होनी चाहिए कि वह समाज के हिस्से में हुए परिवर्तन की सूचना अन्य हिस्सों को दे दें। आदर्श समाज में अनवरत हित के साथ–साथ कल्याणकारी होनी चाहिए। जिन पर सभी लोग गम्भीर चिन्तन के बाद विचार विमर्श करें तथा उनके बारे में एक दूसरे को बताए तथा सभी लोग उस आदर्श समाज को बनाने के लिए भागीदारी भी लें। समाज के अन्य सभी जातियों से सम्पर्क करके बहुविध और निर्विवाद बिन्दुओं को शामिल करें। जहाँ संगठन के अन्य रूपों से वार्तालाप कर सकें और समाज के भीतर सम्पर्क का सर्वत्र प्रसार होना चाहिए। इसी को भाईचारा कहा जाता है और यह प्रजातंत्र का दूसरा नाम है। बाबा साहब डॉ. भीमराव आम्बेडकर कहते हैं कि "प्रजातंत्र सरकार का एक स्वरूप मात्र नहीं है। यह वस्तुतः साहचर्य की स्थिति में रहने का एक तरीका है। जिसमें सार्वजनिक अनुभव का समवेत रूप से सम्प्रेषण होता है। प्रजातंत्र का मूल है, अपने साथियों के प्रति आदर और मान की भावना।"[17]

डॉ. भीमराव आम्बेडकर ने सामाजिक भेदभाव और जाति–प्रथा उन्मूलन के लिए महात्मा ज्योतिबा फूले की पुस्तक 'गुलामगीरी' से प्रेरणा लिया और महात्मा ज्योतिबा फूले को अपना गुरु मानते हुए अपनी पुस्तक 'शूद्र कौन थे' (Who were Shudras) को समर्पित किया। भारतीय इतिहास में 1827 से 1973 तक का कालखण्ड आधुनिक जनमानस के लिए आधुनिक खण्ड रहा है। इस कालखण्ड में राष्ट्रीयता, स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व के लोकतांत्रिक भावों का विकास भी यहीं से होता है। समाज और संस्कृति के मुद्दे पर दलित डटकर खड़े होते हैं तथा राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम में विजयी भी होते हैं। उस समय और समाज का बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है, जिसमें दलितों और स्त्रियों पर विचार किए जा रहे थे। हरिनारायण ठाकुर अपने ग्रंथ 'दलित साहित्य का समाजशास्त्र' नामक ग्रंथ में लिखते हैं कि "यद्यपि महात्मा फूले और आम्बेडकर को भी अंग्रेजी सरकार से बहुत शिकायतें रहीं, फिर भी दलित और स्त्रियों के हित में किये गये कार्यों के लिए ही महात्मा फूले ने अंग्रेजों को दलितों को मसीहा कहा था और बाबा साहब ने कहा था– अंग्रेज देरी से आये और जल्दी चले गये।"[18] डॉ. आम्बेडकर ने भी "समाज, संस्कृति और राजनीति की यही लड़ाई लड़ी थी। किन्तु उनकी यह लड़ाई अधिक धारदार, तार्किक और वैज्ञानिक थी। भारतीय जनता को समानता का अधिकार दिलवाना उनका मिशन था और आजादी के बाद यह मिशन लगभग पूरा–सा हो गया। संविधान में 'समानता के अधिकार' को मौलिक मान लिया गया। बाबा साहब ने जीवन भर यही लड़ाई लड़ी और आजादी के बाद भी समानता के मौलिक अधिकार को कार्यरूप देने के लिए उनकी लड़ाई जारी रही।"[19] डॉ. अरविन्द कुमार लिखते हैं कि "डॉ. भीमराव

Scanned with OKEN Scanner

आम्बेडकर ने अपने साहित्य के माध्यम से एक नये वातावरण का निर्माण किया। अस्पृश्यों में संगठन और संघर्ष का बीजारोपण किया। ऐसा लगता है कि डॉ. आम्बेडकर के संघर्षशील जीवन एवं उनके अपने साहित्य में दलित साहित्य सृजन के लिए प्रेरित किया।"[20]

बाबा साहब भीमराव आम्बेडकर तत्कालीन भारत में देश के शिक्षित विद्वानों में से एक थे। प्रवास के दौरान बाबा साहब डॉ. भीमराव आम्बेडकर अमेरिका और यूरोपीय समाज की प्रगतिशील रीति–नीति और व्यवहारों ने उनके मन में द्वन्द्वात्मक प्रतिक्रिया उत्पन्न की। और उनकी तुलना में भारतीय समाज की दयनीय स्थिति, रूढ़िग्रस्तता और समाज के बहुत बड़े वर्ग के पशु तुल्य जीवन की प्रतिक्रिया ने डॉ. भीमराव आम्बेडकर को एक क्रान्तिकारी चिन्तक एवं विचारक बना दिया तथा डॉ. आम्बेडकर ने हिन्दू धर्म और भारतीय समाज में सुधार के प्रयत्न शुरू कर दिये।

दलित समाज के सुधार हेतु उनके आन्दोलन 1917–18 से प्रारम्भ हो गये थे। किन्तु 1927 से उनके आन्दोलन ने जोर पकड़ना शुरू किया। उनके प्रमुख आन्दोलनों में महाड़ सत्याग्रह (1927), मंदिर–प्रवेश आन्दोलन (1929–30 कालाराम एवं अन्य मन्दिर), लेबर पार्टी की स्थापना (1936), नागपुर सम्मेलन (1942), धर्म परिवर्तन आन्दोलन (1956) आदि महत्वपूर्ण हैं। बाबा साहब भीमराव आम्बेडकर ने साइमन कमीशन और गोलमेज सम्मेलन का न केवल समर्थन किया, बल्कि उनमें भाग लेकर दलितों का पक्ष अंग्रेजों के समक्ष रखा। उनके ठोस तर्कों से अंग्रेजी सरकार प्रभावित हुई तथा दलितों की स्थिति में सुधार के लिए अनेक कानून बनाया और भारतीय समाज में पारित किया। उनके लिए 'कम्यूनिल एवार्ड के तहत सुविधाएँ दी गयी, जहां पूना–पैक्ट में बदलकर सीमित हो गयी। बाबा साहब समाज और राजनीति को जोड़कर देखते थे। 1946 में संविधान सभा के सदस्य, अन्तरिम सरकार में कानून मंत्री बनना और 1951 में मन्त्री पद से इस्तीफा आदि उनके जीवन के अनेक पडाव हैं। 1956 में उन्होंने बौद्ध धर्म धारण किया था और उसी वर्ष उनकी मृत्यु हो गयी। हरिनारायण ठाकुर लिखते हैं कि "बाबा साहब की धर्मान्तरण की घोषणा ने समूचे देश में खलबली मचा दी थी। गाँधी, मालवीय, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, नेहरू आदि अनेक नेताओं ने प्रतिरोध किया था। इस अवसर पर सरकार महाराज को दिये गए एक साक्षात्कार में आम्बेडकर ने कहा था कि इस समस्या का निदान सवर्ण हिन्दू ही कर सकते हैं।"[21] डॉ. भीमराव आम्बेडकर ने कहा था– "यदि सवर्ण हिन्दुओं ने यह माना होता कि तालाब से पानी लेना दलित वर्णों का अधिकार है, तो सत्याग्रह की जरूरत नहीं पड़ती। लेकिन दुर्भाग्य से हिन्दुओं ने अपने व्यवहार से यह मानने से इनकार कर दिया कि उस तालाब से पानी लेना दलितों का भी अधिकार है, जो सबके लिए यहाँ तक कि मुसलमानों और और अन्य गैर–हिन्दुओं के लिए खुला है।"[22]

डॉ. भीमराव आम्बेडकर ने भारत की सामाजिक और राजनीति के क्षेत्र में पैर रखते ही हिन्दू धर्म व्यवस्था के खिलाफ बगावत का झंडा उठाया था। उनका ऐलान था कि हिन्दू बनकर मरुँगा नहीं। अंततः उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम समय में बौद्ध धर्म स्वीकार कर दलितों के लिए नवबौद्ध धर्म दिया। दलित समाज की पीड़ा, छुआछूत और दलितों के साथ हो रहे अनवरत प्रकार के अत्याचारों से बाबा साहब डॉ. भीमराव आम्बेडकर परिचित थे, इसका कारण वे जाति–प्रथा को ही मानते थे। इसलिए बाबा साहब डॉ. भीमराव जाति–प्रथा के सन्दर्भ में कहते हैं कि 'जाति है कि जाती नहीं'। बाबा साहब डॉ. भीमराव आम्बेडकर ने पूरा जीवन लगा दिया जाति–प्रथा उन्मूलन में। उसका यह परिणाम है कि आज बहुत हद तक जाति–प्रथा का निवारण संवैधानिक प्रावधान से सम्भव हो पाया है।

◆◆◆

सन्दर्भ :

1. दलित साहित्य का समाजशास्त्र – हरिनारायण ठाकुर, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ.46
2. वही, पृ.46
3. दलितों के दलित – हरीकिशन संतोषी, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2009, पृ.94
4. दलित साहित्य का समाजशास्त्र – हरिनारायण ठाकुर, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ.47
5. हू वेयर शूद्राज – डॉ. अम्बेडकर, पृ.239
6. दलित साहित्य का समाजशास्त्र – हरिनारायण ठाकुर, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ.49–52
7. वही, पृ.371–372
8. अस्पृश्यता – डॉ. भीमराव आम्बेडकर, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, प्रथम संस्करण 1992, पृ.8
9. वही, पृ.8
10. वही, पृ.17
11. वही, पृ.17
12. आम्बेडकर से दोस्ती समता और मुक्ति –सं. सुभाषचन्द्र, साहित्य उपक्रम प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2014, पृ.46
13. वही, पृ.48
14. वही, पृ.48–49
15. वही, पृ.50
16. वही, पृ.50
17. वही, पृ.50
18. दलित साहित्य का समाजशास्त्र – हरिनारायण ठाकुर, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ.257
19. वही, पृ.263
20. दलित चिन्तन का परिप्रेक्ष्य, सन्दर्भ : अक्करमाशी और जूठन, डॉ. अरविन्द कुमार, विहान पब्लिकेशन, लखनऊ, संस्करण 2014, पृ.21
21. दलित साहित्य का समाजशास्त्र – हरिनारायण ठाकुर, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ.267
22. दलित साहित्य 'वार्षिकी' – संपादक–जयप्रकाश कर्दम, अकादमिक प्रतिभा प्रकाशक एवं वितरण दिल्ली, 2007–08, पृ.42

Scanned with OKEN Scanner